P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-2* ISSUE-1* April - 2017
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

भाव और भाषा के स्तर पर चंद्रकांत देवताले की कविता का वैशिष्ट्य

अनूप सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

साहित्य की एक ही कसौटी है और वह है मानवीय जीवन। जीवन के यथार्थ से मुंह न मोड़ते हुए उसके उज्ज्वल पक्षों को संवेदना के धरातल पर चित्रित करना साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है। आधुनिक हिन्दी कविता जटिल होते मानवीय जीवन के संघर्ष, विरोधाभासों व विसंगतियों का निरूपण करती है। समकालीन हिन्दी कविता में चंद्रकांत देवताले ऐसे ही एक कवि हैं जो जीवन के उज्ज्वल व धूमिल पक्षों को एक साथ कविता में व्यक्त कर पाने में सिद्धहस्त हैं। विखंडित होते जीवन मूल्यों और तदनुसार मनुष्य की बदहाली की चिंता उनकी कविता का मुख्य स्वर है। उन घृणित ताकतों से भी देवताले अपनी कविताओं के माध्यम से सीधे टकराते हैं जो मानवता को कुचलने की कोशिश करती हैं। विरोध का स्वर उनकी कविताओं को एक अलग ही धार देता है। इसलिए चंद्रकांत देवताले की कविता की भाषा बहुरंगी है। उनकी कविता आम आदमी के जीवन से सीधे साक्षात्कार करती है इसलिए उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। उनकी कविता जीवन के उदात्त पक्षों को चित्रित करती है इसलिए उनकी भाषा में आभिजात्य स्वरूप भी दिखाई देता है। उनकी कविताओं में जीवन को विद्रूप बनाने वाले नेता, माफिया और धर्म के ठेकेदार लोगों के विरूद्ध आक्रोश के स्वर भी हैं और उनके विरूद्ध ललकार भी है तो उनकी भाषा में बेचैनी, उग्रता व तल्खी के स्वर भी देखे जा सकते हैं जिससे भाषा अनेक स्थलों पर अपनी मर्यादा तोड़ती नजर आती है।

बेहद नीचे से (जीवन के धरातल से) आरंभ करने वाले देवताले अपनी कविताओं में बहुआयामी जीवन के समस्त पहलुओं को समाहित करते हैं। स्त्री, आदिवासी, बच्चे, परिवार व ग्रामीण संस्कृति उनकी करुणा के स्रोत हैं। उनकी कविता ठहरे हुए जीवन की नहीं गतिशील जीवन की कविता है और उनकी भावप्राण भाषा कविता को जीवंतता प्रदान करती है। इसलिए चंद्रकांत देवताले की कविता को '**लाइव पोयट्री**' की संज्ञा देना समीचीन है।

मुख्य शब्द :गद्यात्मकता, आत्म साक्षात्कार, सायास कविता, वैयक्तिकता, स्वघोषित प्रतिबद्धता, कंट्रास्ट, निःसहायता, आंतरिक तरलता, पक्षधरता, सृजनधर्मी, बाजारवाद, सामुदायिकता, एकान्त अपेक्षा, करुण अवसान, भावप्राण, गृहस्थ प्रेम, विस्थापन, अंतहीन पीड़ा, स्वभोक्ता, उद्ध्वस्त, विराट का कवि, उद्याम प्रतिज्ञा, जेनुइन (Genuine), खंख, लाइव पोयट्री, पर्यावरण, संस्कृति, जीवनी शक्ति।

प्रस्तावना

साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित डॉ. चन्द्रकांत देवताले वर्तमान समय में हिन्दी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। सामयिकता के आग्रह ने देवताले की कविताओं में भाव व भाषा दोनों ही स्तरों पर विशेष प्रभाव डाला है। एक ओर उनकी कविताओं में वर्तमान जीवन की विसंगतियों व हलचल को मुख्य स्थान मिला है तो दूसरी ओर उन्होंने काव्य भाषा में व्याप्त गद्यात्मकता को विलक्षणता प्रदान की है। समकालीन हिन्दी कविता की ये दोनों प्रमुख प्रवृत्तियाँ देवताले की कविता को जनमानस से सीधे जोड़ती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि देवताले अपनी कविताओं का अभिन्न हिस्सा हैं। जीवन से आत्म साक्षात्कार करते हुए वे कविताएँ लिखते हैं। सायास कविता उनके स्वभाव में नहीं है।

देवताले के कवि व्यक्तित्व की प्रेरक परिस्थितियाँ

आपातकाल के दौरान नागरिक अधिकारों का जिस तरह हनन हुआ उससे देवताले बहुत आहत हुए। स्वतंत्रता के बाद लोगों की आकांक्षाओं व स्वप्नों को धक्का लगा। समस्त आदर्श अतीत की बात हो गए। सत्ता लोलुपता तथा आपराधिकता में तेजी से वृद्धि हुई। स्त्रियों, बच्चों व समाज के अन्य पिछड़े,

वंचित, कमजोर व गरीब लोगों का जीवन अनचाहे कष्टों से भरता गया। विकास के नाम पर पर्यावरण को भारी क्षति पहुंचती गई। नगरों में बेतहाशा जनसंख्या वृद्धि हुई तथा जीवन की मूलभूत सुविधाओं के लिए लोग तरसते रहे। आर्थिक विषमता की खाई लगातार बढ़ती गई। भ्रष्टाचार हर स्तर पर व्याप्त हो गया। गरीबों की संख्या बढ़ती गई, अमीर और अमीर होते गए। संयुक्त परिवारों पर वैयक्तिकता कहर बन कर टूट पड़ी। लोग काम की तलाश में तथा अपना व्यक्तिगत जीवन बेहतर बनाने के लिए अपने मूल स्थान से विस्थापित होते गए। धार्मिक आडम्बर व पाखंड ने लोगों का भावनात्मक शोषण किया लेकिन उनकी गरीबी व भूख को दूर करने का कोई उपाय नहीं किया। इन विकट परिस्थितियों के बीच आम आदमी की लाचारी को देवताले अपने भीतर महसूस करते रहे हैं तथा इसे अपनी कविताओं में व्यक्त करते रहे हैं। कभी हस्तक्षेप और प्रतिरोध के साथ, कभी आक्रोश तो कभी करुणा के साथ। देवताले की काव्य संवेदना उनके अपने देखे और भोगे हुए परिवेश की ही देन है।

मेरी किस्मत में यही अच्छा रहा
कि आग और गुस्से ने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा
मेरी यही कोशिश रही
पत्थरों की तरह हवा में टकराएँ मेरे शब्द
और बीमार की डूबती नब्ज को थामकर
ताजा पत्तियों की सांस बन जाएं
(कवि ने कहा, पृ. 138)

देवताले की कविता का वैशिष्ट्य

भाव–संवेदना

समकालीन हिन्दी कविता में चंद्रकांत देवताले की स्वघोषित प्रतिबद्धता हमें विवश करती है कि उनके रचना संसार में विस्तार से हस्तक्षेप किया जाए। देवताले की कविताओं में 'कंट्रास्ट' की जबरदस्त उपस्थिति है। देवताले का जीवन व व्यक्तित्व कंट्रास्ट से निर्मित है। उनमें भावना व तर्क का, आस्था व अनास्था का, दृढ़ता व निस्सहायता का, ग्राम्य व नगरीय का, परंपरा व आधुनिकता का अद्‌भुत सम्मिश्रण है।

एक गाँव ने मुझे जन्म दिया
एक धक्के ने मुझे शहर में फेंक दिया
और शहर ने मुझे कविताओं में उछालकर
कहीं का नहीं रक्खा
(दीवारों पर खून से पृ. 11)

अपने समय की निर्मम सच्चाईयों से जूझते किन्तु आंतरिक तरलता के सहारे देवताले ने 1956–57 से अब तक 550 से अधिक कविताओं की रचना की है जो अलग–अलग कविता संग्रहों में संकलित हैं।

औरत, लकड़बग्घा हँस रहा है, थोड़े से बच्चे और बाकी बच्चे, पेड़, बच्चे के खो जाने के बाद, इस पठार पर, बालम ककड़ी बेचने वाली लड़कियाँ, बेटी के घर से लौटना, माँ पर नहीं लिख सकता कविता, डिठौना था उसका नाम, सवाल–जवाब, आग हर चीज में बताई गई थी, गाँव तो थूक नहीं सकता था मेरी हथेली पर, नागझिरी, मैं तुम्हें पीता हूँ, इतनी पत्थर रोशनी, देवी वध, यमराज की दिशा, आग, 'मोचीरम' की याद, कठफोड़वा, युवाओं द्वारा शपथ, पत्थर फेंक रहा हूँ, इतने दरख़्त और पत्ता तक नहीं खड़कता, खुद पर निगरानी का वक़्त आदि ऐसी कविताएँ हैं जिनमें देवताले की काव्य संवेदना और शिल्प के सामर्थ्य को आसानी से समझा जा सकता है। कविताओं में और उनके माध्यम से वे अपनी पक्षधरता स्पष्ट करते हैं। किसान, मजदूर और हर उस व्यक्ति के प्रति वे कृतज्ञता भाव प्रकट करते हैं जो दूसरो के लिए अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं।

जो नहीं होते धरती पर
अन्न उगाने, पत्थर तोड़ने वाले अपने
तो मेरी क्या बिसात जो मैं बन जाता आदमी
(कवि ने कहा, पृ. 13)

देवताले की कविताओं में परिवार (भारतीय ग्रामीण परिवार) प्रमुख स्थान प्राप्त कर पाया है। परिवार, भारतीय संस्कृति का सर्वाधिक गौरवपूर्ण व सशक्त पहलू रहा है। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति, समाज व देश प्रगति व विकास के पथ पर अग्रसर होते रहे हैं। स्त्री–पुरुष के सूक्ष्म व संवेदनशील सम्बन्धों से परिवार की नींव दृढ़ता प्राप्त करती है। बच्चे व वृद्धजन परिवार नाम की इकाई के महत्वपूर्ण अंग है। आज परिवार अपने सृजनधर्मी स्वरूप से कहीं आगे निकल चुका है। औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण व बाजारवाद ने न केवल भारतीय परिवार को वरन् ग्रामीण संस्कृति की सामुदायिकता व गरिमा को भी क्षत–विक्षत कर दिया है। बच्चों पर एकांत अपेक्षा के बढ़ते बोझ तथा वृद्धजनों के प्रति उपेक्षा भाव ने परिवार के आंतरिक ताने–बाने को ध्वस्त कर दिया है। परिवार पर आए इन संकटों के प्रति देवताले सचेत हैं और चिंतित भी। आज पारिवारिक मूल्यों के टूटते समय में देवताले हमें सोचने पर विवश करते हैं। उनकी कविताएँ उस पारिवारिक संस्कृति के करुण अवसान की गाथाएँ हैं।

मैं ढूंढता हूँ अपनी आत्मा का आदिम टुकड़ा
जो टूटकर बिखर गया है कांसे की झंकार में
.....मैं अकेला, कोई नहीं साथ यहां
जहां आदमी रहते हैं, घर नहीं रहता
.....खांसते–खांसते कहते हैं दादाजी
खत्म हुआ सब कुछ, बची हैं बातें।
(कवि ने कहा, पृ. 36, 41)

परिवार व गृहस्थ जीवन के प्रति देवताले की अपूर्व निष्ठा है। यह निष्ठा उन्हें समकालीन कवियों से अलग ही नहीं करती वरन् विचारधाराओं के बीच रहते हुए और उनसे प्रभावित होते हुए भी भावप्राण कवि की विशिष्टता से सम्बद्ध करती है। परिवार का आधार है गृहस्थ प्रेम अर्थात् पति–पत्नी का प्रेम। यह प्रेम देवताले की कविताओं में अत्यंत सूक्ष्म रूप से व्यक्त हुआ है जो अपनी गहराई में समुद्र को भी अपना सानी नहीं मानता।

खुली आँखों से
देख सकता हूँ मैं जो कुछ
उसमें तुम शामिल नहीं हो
और बंद आँखों से मेरा तुम्हें देखना
तुम कभी नहीं देख सकती
क्या तुमने मछली को पानी पीते देखा है

मैं तुम्हें पीता हूँ जैसे मछली पानी
(इतनी पत्थर रोशनी, पृ. 129)

आधुनिक विकास की अंधी दौड़ में न केवल हमारे पर्यावरण की अपूरणीय क्षति हुई है वरन लोगों को विशेषकर आदिवासी लोगों को विस्थापन की अंतहीन पीड़ा झेलनी पड़ती है। आदिवासी क्षेत्रों में पैर पसारते पूंजीवाद व बाजारवाद ने पहले से ही त्रस्त आदिवासियों के जीवन की बची–खुची खुशियों को भी लीलना शुरू कर दिया है। उनके विकास–समुचित विकास की ओर हमारा ध्यान क्यों नहीं जाता। आदिवासी क्षेत्रों में नक्सली आतंक की गंभीर होती समस्या के प्रति देवताले की कविताएँ हमारी आँखे खोलती हैं। सरकार के लिए सचेतक का काम कर सकती हैं। इस पीड़ा को देवताले ने स्वभोक्ता के रूप में व्यक्त किया है। अपने को 'कठफोड़वा' के अद्वितीय प्रतीक से तथा उजड़े जनजीवन को 'उद्ध्वस्त' शब्द से नई अर्थवत्ता प्रदान की है। हरसूद डूब के अंतिम दिन की परिस्थितियों पर लिखी यह कविता (कठफोड़वा) विस्थापन की त्रासदी की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है।

ऐसी उजड़ी में
मैं किरासीन की पिचकी हुई कुप्पी
मिट्टी के टूटे दीये स्लेट पट्टी के टुकड़े
आम जामुन की बदरंग गुठलियाँ, लकड़ी की कंघी
और जगह छोड़ती छायाओं के साथ
अंधेरे की नोक पर ठिठके हुए जनपद की
बुझती रोशनी देख रहा हूँ
वह कठफोड़वा उद्ध्वस्त में
मरे हुए दरख्त की छाती कोंच रहा है
पता नहीं उसका भी क्या होगा?
शायद मैं भी एक कठफोड़वा
बेहद उदास जख्मी लौटूँगा
पानी के ताबूत पर
चोंच मारते रहने के
अहसास की थकान के साथ
जो दिखाई दे रहा है
वह तो है ही
जो नहीं दिखाई दे रहा
जो कभी दिखाई नहीं देगा
उसके लिए अभी
वक्त की पत्थर हुई जुबान।
(पत्थर फेंक रहा हूँ, पृ. 39)

उजड़े जनजीवन को बचाने की यह उद्याम लालसा देवताले को भोगी व देखी हुई इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करती है। देवताले कवियों के काल्पनिक संसार के लिए एक चुनौती बनकर सामने आते हैं।

कविताओं में एक साथ कई रंगते देवताले को विराट का कवि बनाती हैं। देवताले स्त्री, बच्चों व प्रकृति को अपने नैसर्गिक रूप में मानव जीवन की सबसे बड़ी धरोहर मानते हैं। इनकी कविताओं में मानवता व जीवन के इन उज्ज्वल पक्षों की भूमिका व इनके ह्रास की चिंता मात्र ही होती तो एक सामान्य बात होती। वे सच्चे अर्थों में मानवता के कवि हैं। मानवता पर छाए संकटों से वे उद्वेलित हैं, हताश हैं और इसी हताशा के बीच जीवन के प्रति उनकी उद्याम प्रतिज्ञा जैसे साकार हो उठती है।

मैं हूँ उन असंख्य आंखों में
जो भूखी एक फूल पौधे की तरह
जिन्दगी को पनपते देखने के लिए
(कवि ने कहा, पृ. 112)

देवताले की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कविताएँ 'औरत' पर केन्द्रित हैं। इनकी कविताओं में औरत जीवंत रूप में, एक गतिशील इकाई के रूप में सामने आती है। देवताले औरत को परम्परागत छवि की कैद से मुक्त करते हैं। आज के समय में महिला सशक्तीकरण के दंभी दावों को देवताले की कविताएँ चुनौती देती हैं। आज जब स्त्री विमर्श के बहाने अनेक संगठन स्त्रियों की आवाज को सामने लाने की कोशिश कर रहे हैं तब कुछ नारीवादी आंदोलनों को वे आइना दिखाते हैं और बताते हैं कि औरत की वास्तविकता क्या है और उसे सम्पूर्णता में समझना कठिन ही नहीं असंभव है। स्वयं देवताले को एक औरत को समझने के लिए हजार साल की जिन्दगी चाहिए। उसकी अंतहीन पीड़ा, उसके समर्पण व त्याग, उसकी करुण–कोमल संवेदना को किसी आंदोलन के माध्यम से समझना सबसे बड़ी भूल होगी।

फिर भी एक औरत को समझने के लिए
हजार साल की जिन्दगी चाहिए मुझे
क्योंकि औरत सिर्फ भाप या बसंत हीं नहीं है
एक सिंफनी भी है समूचे ब्रह्मांड की
जिसका दूध, दूब पर दौड़ते बच्चों में
खरगोश की तरह कुलाचें भरता है
और एक कंदरा भी है किसी अज्ञात इलाके में
जिसमें उसकी शोकमग्न परछाई
दर्पण पर छाई गर्द को रगड़ती रहती है
(आग हर चीज में बताई गई थी, पृ. 36)

भाषा–शिल्प

समकालीन कविता की विशेषता या प्रकृति को प्रतीक या बिम्ब विधान से समझना समय से मुंह मोड़ना है। जिस तरह के जीवन की व्याख्या या चित्रण समकालीन कविता कर रही है उसे कुछ प्रतीकों या बिंबो में बांधना उसकी सामर्थ्य को कम आंकना होगा। वर्तमान जीवन की जटिलताओं को परम्परागत प्रतीकों या बिंबों की सहायता से व्यक्त भी नहीं किया जा सकता है। देवताले ने इसका एहसास शीघ्र ही कर लिया था। इसलिए उनकी काव्य भाषा के कुछ विलक्षण तत्व हैं जो समकालीन जीवन को 'जेनुइन' रूप में चित्रित करने में सफल हो पाए।

देवताले की कविता की भाषा न अभिजनों की भाषा है, न अनपढ़ लोगों की, न आदिवासी लोगों की वह तो उस विशाल समुदाय की भाषा है जो बचपन से अपने परिवेश के साथ रागात्मक रिश्ता रखते हुए बड़े हुए हैं या हो रहे हैं जिनमें इतनी मानवता तो है कि वे इस खंख होते समय में जीवन रोशनी के वाहक बने हुए हैं या बन सकते हैं। पूरा परिवेश, संस्कृति, पारस्परिक संबंध अपने गत्यात्मक रूप में कविता में ऐसे आते हैं जैसे सामने घटित हो रहे हों। इसलिए देवताले को **'लाइव पोयट्री'** का पुरोधा कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। जीवन में होने

वाली सामान्य घटनाएँ भी कविता में संवेदना का विषय बन जाती हैं–देवताले इसमें सिद्धहस्त हैं। जीवन के प्रति उनकी सोच और करूणा ने सामयिकता के आग्रह के बावजूद उनकी कविताओं को सपाट बयानी की ओर जाने से यथासंभव बचाया है। इस कार्य में देवताले को काव्य भाषा का भी बड़ा योगदान है।

कथन की विविध भंगिमाएँ, लोकजीवन व संस्कृति का सजीव चित्रण, नई परिस्थितियों के लिए नए शब्दों का प्रयोग, विशेषणों का अभिनव प्रयोग, तत्सम–तद्भव–देशज शब्दों का समन्वित प्रयोग उनकी काव्य भाषा को नई ऊँचाइयाँ प्रदान करते हैं। छायावाद के बाद पहली बार हिन्दी की शब्द सामर्थ्य पर गर्व होता है। देवताले भाषा के नए मानदंड स्थापित करते हैं। वे एक साथ कबीर, तुलसी, प्रसाद, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि की भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

और दयाधर्म के प्रकंपित आलोक में
मोक्ष यहाँ खैरात की तरह बंट रहा है
(कवि ने कहा, पृ. 26)

और मैं गाँव के उस घी को जी भर कूड़ता
जिसके स्वाद को कभी भी तरसेगी दुनिया।
(कवि ने कहा, पृ. 30)

गया साथियों गया
मिट्टी के घड़े का जमाना
जो पाप से भर जाने के कारण
फूट जाता था आप से आप कभी
(आग हर चीज में बताई गयी थी, पृ. 119)

देवताले जय जयकार और हाहाकार के संगम पर नहा रहे एक साथ संत– सुधारक – डकैत – हत्यारे/ राजनेता आदि के माध्यम से मानवता को लील रहे कई–कई मुखौटों वाले समाज की परतें उधेड़ते हैं। आज जब बाबाओं के कारनामें एक के बाद एक सामने आ रहे हैं तो देवताले की कविताएँ अपने को सही साबित कर रही हैं। चारों ओर बाजारवाद व भूमंडलीकरण के शोर में आम आदमी की स्थिति दयनीय हो गई है। मानवता के रक्षक के रूप में देवताले की कविताएँ हमारा मार्गदर्शन करती हैं–विशेषकर स्त्री, बच्चों, पर्यावरण व संस्कृति के सम्बन्ध में। पारिवारिक मूल्यों के विखंडन तथा समाज में व्याप्त अराजकता के विरुद्ध देवताले की कविताएँ हमें जीवनी शक्ति प्रदान करती हैं।

इस भागती हुई दुनिया में
सचमुच कहाँ है गायों का गुनगुना दूध
ताजगी पीते बच्चे
चमकती हुई उषाएँ
(दीवारों पर खून से पृ. 154)

उद्देश्य

समकालीन हिन्दी कविता के समर्थ कवि चंद्रकांत देवताले की कविताओं में व्यक्त मानवीय जीवन के मर्म को उद्घाटित करने तथा भाव व भाषा दोनों ही स्तरों पर देवताले की कविता की विविधता व वैशिष्ट्य को प्रकट करना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। देवताले की कविताएं जीवन की निर्मम सच्चाइयों से आत्म साक्षात्कार कराती हैं और एक बेहतर इंसान बनने की ओर प्रेरित करती हैं। बिना किसी लाग–लपेट के सामाजिक जीवन की विसंगतियों व विरोधाभासों की अभिव्यक्ति आम पाठक को सावचेत करती हैं।

निष्कर्ष

देवताले की सम्पूर्ण काव्य यात्रा में मनुष्यता व उस पर मंडराते खतरे तथा उसे बचाने की चिंता ही अनेकानेक रूपों व भंगिमाओं में व्यक्त होती रही है। इसलिए यदि उन्हें मानवता के कवि भी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी काव्य प्रतिभा भी उन्हीं स्थलों पर अधिक दीप्त हुई है जहाँ मनुष्यता को कुचलने या रौंदने की निर्मम कोशिश की गई है। देवताले की काव्य संवेदना का रेशा–रेशा मनुष्यतो को बचाने की चिंता से बुना गया है। वे अपने कवि होने को भी मनुष्यता से अलग नहीं देखते। एक सच्चे सृजनधर्मी कवि की कसौटी पर खरे उतरते हुए देवताले ने अपने समय व परिस्थितियों के दबाव को महसूस किया है लेकिन उनसे पलायन कभी नहीं किया और न ही कोई समझौता। कवि के रूप में समाज के प्रति अपने दायित्व को वे साफ–साफ पहचानते हैं व समझते भी हैं।

इस ढ़हते हुए सब कुछ के बीच
जब खड़ा हूँ समय के रीतेपन में
मुझे देख रही हैं फूलों–पत्तियों की ही नहीं
धरती की दरारों से भी झांकती अनगिनत आँखें
(कवि ने कहा, पृ. 136–137)

आज के समय में परिस्थितियों का दबाव इस तरह बढ़ता जा रहा है कि देवताले न केवल स्वयं के लिए वरन् हर उस विवेकशील व्यक्ति के लिए कहते हैं कि यह अपने आस–पास ही नहीं खुद पर निगरानी रखने का वक्त भी है। बेअसर होते कवि व कविताओं के लिए चिंतित भी हैं। यह चिंता व बैचेनी जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त छद्म व पाखंड को नेस्तनाबूद करती है। इसीलिए देवताले आज के कवियों की पंक्ति में आगे ही आगे खड़े होने के अधिकारी हैं।

जितनी दूसरों पर नहीं
उससे कहीं अधिक ख़ुद पर
निगरानी रखने का वक्त
वैसे नहीं जैसे दूसरे रख रहे तुम पर
हाँफ रही कविता
कितना कर सकती है छाती कुट्टा
कह रही बार–बार निगरानी रखो
जैसी दुश्मन पर वैसी ही खुद पर
चुटकी भर अमरता–खातिर
विश्वासघात न हो जाए
अपनी भाषा, धरती और लोगों के साथ
(खुद पर निगरानी का वक्त, पृ.123–124)

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. सिंह अनूप, चंद्रकांत देवताले की कविता में संवेदना और शिल्प, प्रतीक्षा पब्लिकेशंस, जयपुर, 2016*
2. *देवताले चंद्रकांत, कवि ने कहा, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012*
3. *देवताले चंद्रकांत, खुद पर निगरानी का वक्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015*

4. *देवताले चंद्रकांत, इतनी पत्थर रोशनी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002*
5. *देवताले चंद्रकांत, पत्थर फेंक रहा हूँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010*
6. *देवताले चंद्रकांत, दीवारों पर खून से, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975*
7. *त्रिपाठी आशीष, मेरे साक्षात्कार (चंद्रकांत देवताले) किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013*
8. *डॉ. त्रिपाठी अशोक, समकालीन हिन्दी कविता, शारदा सदन, इलाहाबाद, 1981*
9. *डॉ. सोनकर मनोज, सत्तरोत्तरी हिन्दी कविता : संवेदना, शिल्प और कवि, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1994*
10. *डॉ. शर्मा रामबिलास, भारतीय साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996*
11. *तिवारी विश्वनाथ प्रसाद, समकालीन हिन्दी कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010*
12. *डॉ. चतुर्वेदी रामस्वरूप, भाषा और संवेदना, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981*
13. *डॉ. शर्मा मनमोहन, भारतीय संस्कृति और साहित्य, त्रिभुवन प्रकाशन, अजमेर, 1967*